**ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA**
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 251-253**

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

# भारत में न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक अतिसक्रियता का समीक्षात्मक अध्ययन

**1. वीरेन्द्र कुमार दीक्षित**
**2. डॉ0 राजीव रत्न द्विवेदी**

1. शोध अध्येता– राजनीति विज्ञान, 2. एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान अतर्रा पी. जी.कॉलेज, अतर्रा, बाँदा (उ0प्र0) भारत

**Received-10.03.2023, Revised-16.03.2023, Accepted-21.03.2023** **E-mail: vishnucktd@gmail.com**

***सारांशः*** ***समय की गति ने परिवार की इकाई को राज्य के स्वरूप में परिवर्तित कर दिया है जब विषय आदर्श राज्य की व्यवस्था का हो, तो अनेक राज्यदार्शनिक और विचारकों के योगदान का उल्लेख प्रासंगिक हो जाता है। अधिकांश विचारको में यह समानता पायी गयी है, कि उनके विचार संदर्भीय और दूरदर्शिता से युक्त है, आधुनिक राज्य की व्यवस्था के लिए सबसे ज्यादा जरूरी व्यक्ति का विकास, स्वतंत्रता, मानवता, गरिमा, समानता, न्याय, बंधुत्व, मानव कल्याण आदि पर विशेष चिंतन किया गया, चूंकी मध्यकाल में धर्म (आत्मा विहीन ढांचा) के पोषण का साधन व्यक्ति को बनाया गया, जिसके परिणाम स्वरूप धर्मसुधार आंदोलन, पुनर्जागरण, मानवतावादी समाज सुधारकों ने मिलकर व्यवस्था सुधार में सहयोग किया।***

***कुंजीभूत शब्द– राज्यदार्शनिक, प्रासंगिक, दूरदर्शिता, विकास, स्वतंत्रता, मानवता, गरिमा, समानता, न्याय, बंधुत्व, कल्याण।***

व्यवस्था सुधारको ने व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया और माना कि यदि शासन की डोर राजतंत्र और धर्मतंत्र से निकालकर लोकतंत्र को सौप दी जाए, तो अधिक स्वतंत्रता की रक्षा की जा सकती है। जिसकी शुरूआत उदारवाद के पिता लॉक महोदय से होती है, किंतु इसे स्वरूप देने का काम मांटेस्कयू ने 'The spirit of Law' के अंतर्गत प्रतिपादित 'शक्ति के पृथक्करण' की अवधारणा के आधार पर सत्ता को विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के रूप में विभक्त किया। तॉकि कोई किसी की शक्तियों का अपहरण न कर सके और व्यक्ति की स्वतंत्रता सुरक्षित रह सके, किन्तु भारतीय परिवेश में इस 'अवरोध एवं संतुलन' के सिद्धांत को सैद्धांतिक रूप से अपनाया गया है।

कार्यपालिका पर न्यायपालिका एवम व्यवस्थापिका द्वारा नियंत्रण स्थापित किया गया है, व्यवस्थापिका पर न्यायपालिका तथा न्यायपालिका पर व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का नियंत्रण स्थापित किया गया है, यहाँ संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका को संविधान और मूलाधिकारों के संरक्षण का दायित्व सौंपने की नियति से ऐसा उपबंध किया, कि जब सरकार के अंगो में कार्यपालिका एवं विधायिका अपने दायित्वों तथा कर्तव्यों से विमुख होने लगे तो संविधान सम्मत् न्यायिक पुनर्विलोकन के आधार पर न्यायालय विभिन्न प्रकार के आदेश प्रेषित कर सके, यही न्यायिक सक्रियता है।

न्यायिक सक्रियता शब्द संविधान में नहीं है किंतु भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश पी. एन. भगवती के अनुसार जिन व्यवस्थाओं में न्यायालयों को पुनर्विलोकन का अधिकार है, वहीं न्यायिक सक्रियता होती है। न्यायिक सक्रियता का स्वरूप तकनीकी एवं सामाजिक होता है। ऐसा माना जाता है कि न्यायिक समीक्षा की शुरुआत अमेरिका में हुई। 1803 में मारबरी बनाम मेडीसन के मुकदमे में तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश जॉन मार्शल ने न्यायिक समीक्षा की व्याख्या करते हुए कहा कि–''यह निश्चित रूप से न्याय विभाग का कार्य एवं क्षेत्र है कि वह बताएं कि कानून क्या हैं? उन्होंने कहा कि संविधान सर्वोच्च है और व्यवस्थापिका का अंतिम स्त्रोत संविधान है और संविधान की व्याख्या न्यायालय के कार्यक्षेत्र के अधीन है।

न्यायालय का कार्य, कर्तव्यों का निर्वहन तथा कानून का सम्मान करते हुए कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के कार्यों का समीक्षात्मक नियंत्रण है।'' भारत में विधायिका द्वारा बनाए गए विधानों की समीक्षागत शुरुआत 1951 के रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य वाद से मानी जाती है। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू को उनकी व्यक्तिगत आभा, राष्ट्रीय आंदोलन के आदर्शों एवं कांग्रेस की भूमिका का सकारात्मक नैतिक समर्थन प्राप्त था। दूसरी ओर, आजादी के बाद भारतीय सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियां सरकार को समर्थन देती नजर आ रही थीं। ऐसे परिवेश में स्वायत्त लोकतांत्रिक संस्था न्यायपालिका की प्रकृति लोचदार रही। जो निम्न वादों से स्पष्ट होता है जैसे– 1951 के रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य, 1952 के शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ एवं 1965 के सज्जन सिंह बनाम राजस्थान के बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि संविधान निर्माता इस तथ्य से परिचित होंगे, कि सामाजिक–आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में विधायिका को मौलिक अधिकारों में संशोधन करना पड़ सकता है। इसलिए उन्होंने संविधान में मौलिक अधिकारों में संशोधन करने पर कोई रोक नहीं लगाई।

कालांतर में सत्ता में परिवर्तन हुआ और विपक्ष अब पक्ष में आया, तभी से न्यायपालिका की प्रकृति में परिवर्तन आना शुरू हुआ, परिणामस्वरूप न्यायालय निरंतर शक्तिशाली होता गया, जैसे गोलकनाथ और केशवानंद भारती के निर्णय ने न्यायपालिका की स्थित को मजबूती प्रदान की, तभी से न्यायपालिका नये कलेवर के साथ जनता की आवश्यकताएं तथा मांगो को पूरा करने और मार्ग में आने वाले अवरोधों को दूर करने में समर्थ हुई। पी. एन. भगवती ने कई न्यायाधीशों के पत्र को भी जनहितवाद के रूप में स्वीकार करना शुरू किया।

इस आधार पर न्यायपालिका ने समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ Lous Standi के प्रावधान को उदार

**अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक**

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

बनाया, जिसमें पीडित व्यक्ति द्वारा याचिका दायर करने की बाध्यता को समाप्त कर दिया और कालांतर में Suomoto को स्वीकार करता चला गया अर्थात न्यायालय अब समाचार पत्र या न्यूज के आधार पर स्वतः संज्ञान लेने की परिपाटी विकसित कर भारत के सामाजिक एवं मानवीय पहलू को उभारने लगी, जिसके परिणाम स्वरूप न्यायिक निर्णय द्वारा भागलपुर में सैकड़ों कैदियों को न्याय मिला, चर्मकारों के शोषण से संबंधित मामले, दुर्बल वर्गों के हितों से संबंधित मामले, आगरा में चर्मकार उद्योग पर प्रतिबंध, औद्योगिक प्रदूषण से संबंधित मामले ,ओलीम गैस रिसाव का मामला, गंगा नदी प्रदूषण का मामला, ताजमहल का मामला, यौन उत्पीड़न से संबंधित मामले, न्यायिक सक्रियता के तहत प्रारंभिक चरण में नागरिकों के मूल अधिकार, मानवाधिकार, शक्तिहीनों की सुरक्षा आदि पर ध्यान दिया जाता था। पुलिस द्वारा टॉर्चर किया जाना, कस्टडी में मृत्यु, बलात्कार जैसे विषयों के साथ न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 का विस्तार करके सकारात्मक प्रयास किया ।

न्यायिक सक्रियता का ही परिणाम था कि हवाला कांड सामने आया, जिसमें सीबीआई को न्यायालय की काफी फटकार सुननी पड़ी थी। 10 फरवरी 2009 को सर्वोच्च न्यायालय ने मुलायम सिंह यादव मामले में सी.बी.आई. को काफी फटकार लगाई। कोर्ट ने कहा कि आप केंद्र सरकार और विधि मंत्रालय के निर्देश पर काम कर रहे हैं, अपने मन से कार्य नहीं कर पा रहे हैं। इससे संबंधित जनहित याचिका दायर करने वाले को सुरक्षा देने का आदेश भी दिया।

प्रतिभूति घोटाला, दूरसंचार घोटाला आदि मामले सामने आ पाए, न्यायालय की पर्यावरणीय सक्रियता के तहत ही ताजमहल को बचाने का आदेश दिया गया। इसके साथ ही, बेस्ट बेकरी कांड में अल्पसंख्यकों के हितों का प्रश्न, पेट्रोल पंप आवंटन, श्रीमति हिंगोरानी के प्रयास से भागलपुर में सैकड़ों कैदियों को न्याय मिला, एशियाई श्रमिक केस 1982, बंधुवा मुक्ति मोर्चा बनाम संघ, रुदलशाह बनाम बिहार राज्य, दुर्बल वर्गों के हितों से संबंधित मामले (शाहबानो केस), सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन एवं प्रियदर्शिनी मट्टू एवं जेशिका लाल केस में, न्यायिक सक्रियता का ही परिणाम था कि इन्हें न्याय मिल पाया। इसी तरह PUCL के जनहित याचिका पर सर्वोच्च न्यायालय ने निर्वाचन आयोग के लिए जारी किया, कि नामांकन के दिशा–निर्देश जारी होते समय प्रत्येक उम्मीदवार को अपनी आपराधिक पृष्ठभूमि एवं संपत्ति का ब्यौरा देना होगा, जिससे भ्रष्टाचार उजागर हो पाया। न्यायपालिका की इस सकारात्मक पहल से मूलाधिकारों का क्षेत्र व्यापक हुआ और संविधान की प्रगतिशील व्याख्या हो पायी तथा समसामयिक समस्याओं का भी समाधान संभव हो पाया।

न्यायपालिका के उक्त कार्यों की प्रशंसा सामाजिक न्याय के संदर्भ की जा सकती, किन्तु कुछ न्यायिक निर्णय ऐसे भी आये है, जिनको अनदेखा भी नही किया जा सकता हैं जैसे–संसद में वोट के बदले रुपये के मामले में न्यायपालिका तथा विधायिका के बीच होने वाले संघर्ष को भी हम लोगों ने देखा, जिसमें लोकसभा अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए। न्यायालय को गंभीर आलोचना का शिकार तब होना पड़ा, जब करुणानिधि सरकार को हड़ताल न करने के आदेश न माने जाने पर बर्खास्त करने की बात कह दी, जो न्यायालय के कार्यक्षेत्र में बिल्कुल भी नहीं आती।

दिल्ली में सीएनजी मामले में दिल्ली सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को विनम्रतापूर्वक इनकार कर दिया गया, क्योंकि इससे यातायात संबंधी समस्यायें आनी थी, यातायात व्यवस्था ठप हो जाती और जनता क्रोधित होकर आंदोलन कर सकती थी। कावेरी जल विवाद के मामले में भी कर्नाटक के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री एस.एम. कृष्ण ने न्यायालय के आदेशों को विनम्रतापूर्ण अस्वीकार कर दिया। 'यमुना मैली' मामले में बिना कोई वैकल्पिक व्यवस्था सुझाएं झुग्गी–झोपड़ी गिराने का आदेश दिया जाना, एक मामले में न्यायालय द्वारा एक वकील के कार्यालय को ही प्रदूषित घोषित कर दिया जाना, न्यायालय की अतिसक्रियता को दिखाती है। दिल्ली में अतिक्रमण के मामले में भी तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति श्री सब्बरवाल की भूमिका की भी काफी आलोचना हुई।

**तीनों कृषि कानूनों को लागू किये जाने पर लगाई गई रोक–** विशेषज्ञों का कहना है कि क्या पूरा का पूरा कानून ही असंवैधानिक हो सकता है, आप उस कानून के उस अंश को निकालें जो संविधान के प्रतिकूल हो। कॉलेजियम को संस्थागत रूप प्रदान कर उच्चतर न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति में कार्यपालिका को भूमिका निर्वहन से वंचित किया गया। विश्लेषक मानते हैं, कि जो संस्था खुद लोकतांत्रिक नहीं हैं, उसे लोकतंत्र की संस्थाओं में घुसकर लोकतंत्र की सीख देना कहां तक ठीक है। उच्चतर न्यायपालिका में पारदर्शिता और प्रासंगिक जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम 2014 को अवैध घोषित करना। जनहित याचिकाओं की अवधारणा ने "अधिस्थिति के सिद्धान्त को समाप्त कर दिया है, अधिस्थिति के सिद्धान्त से आशय–सुनवाई का अधिकार अर्थात जो पीड़ित है, वही न्यायालय से विधिक उपचार या कानूनी सहायता पाने के लिये पात्र है, जबकि जनहित याचिकाओं ने लोगों की अपेक्षा में वृद्धि से कार्य बोझ को बढ़ा दिया, ऐसा अनुमान है कि न्यायपालिका के समक्ष लंबित पड़ें 2 करोड़ से अधिक मामलों को निपटाया जाए, क्योंकि न्याय मिलने में विलंब भी अन्याय की श्रेणी में आता है। इसी विलंब का परिणाम है कि सामाजिक–आर्थिक समस्याएं जैसे कि नक्सलवाद निरंतर बढ़ता जा रहा हैं, राजनीति का अपराधीकरण और अपराधियों का राजनीतिकरण तीव्र गति से हो रहा है।"

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

याची PIL लाकर न्यायिक दबाव बनाता है, कि प्रशासन में सुधार के लिए दिशा–निर्देश जारी करे। जो लोक प्रशासन में न्यायिक हस्तक्षेप के रूप में देखा जाता है। संविधान के अनुच्छेद 142 में उच्चतम न्यायालय को शक्तिशाली बनाया है, पर ऐसी शक्ति का बार–बार प्रयोग करने से शक्ति के पृथक्करण सिद्धान्त का उल्लंघन होता है। न्यायाधीश वेजामिन कार्डोजो के शब्दों में न्यायाधीश या न्यायालय कोई ऐसा आदर्श नही है कि उनके द्वारा लिये गये, सभी निर्णयों को कानूनी प्रावधानों से भी सर्वोपरि माना जाये। अतः न्यायालयों को खासकर उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को एक विशेष आदर्श स्थापित करना होगा। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश ए.एस.आनंद ने एक सार्वजनिक व्याख्यान में कहा, कि न्यायिक सक्रियता कहीं न्यायिक दुस्साहस न बन जाए, इसलिए न्यायाधीश अपने न्यायिक कार्यों के निर्वहन में सतर्कता व आत्म–अनुशासन का पालन करें। यदि न्यायाधीश आत्म–संयम का अभ्यास नही करेंगे, तो प्रत्येक न्यायाधीश स्वयं मे ही एक कानून बन जाएगे और वे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं पर निर्देश जारी करने लगेंगे, जिससे अराजकता पैदा होगी। "अलमित्रा एच. पटेल बनाम भारत संघ" के मामले में दिल्ली में स्वच्छता के मुद्दे पर नगर निगम को निर्देश देने के प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय ने कहा, कि यह न्यायालय का कार्य नहीं है कि वह नगर निगम को यह निर्देश दे, कि वह अपने बुनियादी कार्य कैसे करे और उसकी कठिनाइयों को कैसे दूर करे। न्यायालय अधिकारियों को केवल यह निर्देश दे सकता है, कि वे विधि द्वारा सौंपे गए कार्यों के अनुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन करे। डिवीजनल मैनेजर अरावली गोल्फ कोर्स बनाम चंदरहास (2007) में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि न्यायपालिका के सुपर विधायिका बनने या अन्य दोनो अंगों की विफलता की स्थिति में एक विकल्प बनने की परिकल्पना नहीं करता। इस प्रकार न्यायपालिका की अपनी सीमाएँ निर्धारित करने की आवश्यकता है। इसलिए न्यायपालिका को न्यायिक लोकप्रियतावाद से बचना चाहिए ।

न्यायपालिका ने अपने दायित्वों को निभाने में किसी प्रकार की लापरवाही नही की, किन्तु कुछ न्यायिक निर्णय परिवेशीय मूल्यांकन के पूर्व ही दे दिए गये, जो न्यायपालिका को आलोचना के कटघरे में खड़ा कर देते है, किंतु अगर ये निर्णय पूर्ण विवेक और संदर्भीय मूल्यांकन के उपरांत दिये गए है, तो न्यायपालिका को सयम में रहने की आवश्यकता है, अन्यथा इसके अनेको दुष्परिणाम हो सकते है, जैसे लोकतंत्र का ढांचा टूटना, अन्य अंगों का पंगु होना, नागरिकों की राजनीतिक अपेक्षा से मोह भंग होना, न्यायपालिका का विशेषीकृत से सामान्यीकृत होना आदि उक्त समस्याओं को बिना नजर अंदाज किये इतना कहा जा सकता है कि न्यायपालिका को अपनी सीमा में रहकर सक्रियता से कर्तव्य निर्वहन करना चाहिए, न कि अतिसक्रियता का रूप धारण करके संतुलन बिगाड़ाने की कोशिश करनी चाहिए। अंततः यह कहा जा सकता है कि किसी भी कार्य की शुरुआत छोटे स्तर से होती है, यही आशंका या भय बना हुआ है, कि अगर न्यायपालिका अपने अति उत्साही कार्यों में सतर्क नही हुई, तो निश्चित ही वो दिन दूर नहीं, जब शासन की व्यवस्था का संतुलन बिगड़ेगा और लोगों का न्यायपालिका से विश्वास भी समाप्त हो जायेगा।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://testbook-com/ias-preparation/hi/judicial-overreach.
2. https://knowlaw-in.translate.goog/index-php/2021/10/26/indian-judiciary-judicial restraintsoverreach//
3. https://www-hindustantimes-com.translate-goog/analysis/judicial-overreach-it-s-the-orderof-the-day/story
4. बक्सी, उपेन्द्र, ज्यूडिशियरी एट द क्रॉस रोड्स, जरनल ऑफ द बी.सी.आई. वॉल्यूम 9(2) 1982 पेज 231–240.
5. गुप्ता, आशा, ज्यूडिशियल रिव्यू इन द यू.एस.ए. एण्ड इण्डिया अ कम्परेटिव स्टडी, इण्डियन वार रिव्यू, वॉल्यूम 17 (1) एण्ड (2) 1990 पेज 79–105.
6. भट्ट, डी0के0, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म : पब्लिक इण्टरेस्ट लिटिगेशन : द इण्डियन एक्सपीरियन्स ए0आई0आर0 1998 जरनल 120.
7. पाण्डेय जय नारायण, भारत का संविधान, 2003 सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद, पृ.सं.413.
8. न्यायालय अवमान अधिनियम 1971 और अधिक्ता अधिनियम।
9. पुखराज, डॉ. जैन व फड़िया, डॉ. बी.एल.य "भारतीय शासन एवं राजनीति" साहित्य भवन प्रकाशन, 21वां संशोधित संस्करण, आगरा (उ.प्र.), 2016, पृष्ठ सं. 361.

*****